6. वेदान्तसार

वेदान्त दर्शन की भूमिका

- वेदान्त वेद के सिद्धान्त है। वेद के चार भाग हैं- मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद्।
- सर्वप्रथम वेदान्त का प्रयोग उपनिषद् के अर्थ में हुआ।उपनिषद् वेद के अन्तिम भाग हैं, इसलिए उनको वेदान्त कहा जाता है।
- उपनिषद् को **अध्यात्मविद्या** या **ब्रह्मविद्या** भी कहते हैं।
- वेद के अन्तिम भाग होने से इसे वेदान्त भी कहा जाता है।
- **'वेदान्तो नाम उपनिषद्प्रमाणम्'** परिभाषा के अनुसार उपनिषदों को प्रमाणरूप में मानकर चलने वाला शास्त्र वेदान्तदर्शन माना गया है।
- इसे सर्वप्रथम व्यवस्थितरूप देने का श्रेय **आचार्य बादरायण** को जाता है। जिन्होंने ब्रह्मसूत्र नामक ग्रन्थ की संरचना की। विद्वानों ने इन्हें **वेदान्तदर्शन का संस्थापक** अथवा प्रणेता आचार्य भी कहा है।
- विद्वानों ने इनका समय 400 ई॰पू॰ के लगभग निर्धारित किया है।
- महर्षि बदर का वंशज होने के कारण इन्हें बादरायण नाम से जाना जाता है।

ब्रह्मसूत्र

- बादरायण वेदान्तदर्शन के प्रसिद्ध ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र की रचना की। इसमें 4 अध्याय, 16 पाद, 192 अधिकरण तथा 555 सूत्र हैं।
- ब्रह्मसूत्र को उत्तरमीमांसा, बादरायणसूत्र, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र, व्याससूत्र तथा शारीरकसूत्र के नाम से भी जाना जाता है।
- इस ग्रन्थ में बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कौषीतकि, ऐतरेय, मुण्डक, प्रश्न, श्वेताश्वतर आदि उपनिषद् ग्रन्थों में प्राप्त वाक्यों पर विचार किया गया है।

ब्रह्मसूत्र का वर्ण्य विषय

- ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय में स्पष्ट, अस्पष्ट एवं संदिग्ध श्रुतियों का ब्रह्म में समन्वय किया गया है।
- द्वितीय अध्याय में अन्य दार्शनिक मतों का दोष प्रदर्शन करके युक्तिपूर्वक वेदान्तमत की स्थापना की गई है।
- तृतीय अध्याय में जीव और ब्रह्म का लक्षण करते हुए उसे मुक्ति का बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग साधन बताया गया है।

- चतुर्थ अध्याय में जीवन्मुक्ति, जीव की उत्क्रान्ति तथा सगुण -निर्गुण उपासना का दिग्दर्शन कराया गया है।

ब्रह्मसूत्र के विभिन्न भाष्य

भाष्यकार	भाष्य
शङ्कराचार्य	शारीरकभाष्य
रामानुजाचार्य	श्रीभाष्य
मध्वाचार्य	पूर्णप्रज्ञभाष्य
भास्कराचार्य	भास्करभाष्य
निम्बार्काचार्य	वेदान्तपारिजातभाष्य
श्रीकण्ठ	शैवभाष्य
वल्लभाचार्य	अणुभाष्य
विज्ञानभिक्षु	विज्ञानामृतभाष्य
आचार्य बलदेव	गोविन्दभाष्य

- **गौडपाद -** अद्वैतवेदान्त का प्रथम प्रवर्तक एवं प्रधान आचार्य गौडपाद को माना गया है।
- विद्वानों ने इन्हें ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी के पूर्वभाग में स्थित माना है।
- गौडपाद ने माण्डूक्योपनिषद् पर प्रसिद्ध कृति '**माण्डूक्यकारिका**' की रचना की।
- आचार्य गौडपाद अद्वैतवाद के प्रमुख आचार्य थे। अपनी कारिकाओं में उन्होंने जिन सिद्धान्तों को बीजरूप में प्रदर्शित किया, उन्हीं को आचार्य शङ्कर ने अपने ग्रन्थों में सरसशैली में प्रतिपादित किया।
- आचार्य गौडपाद के शिष्य तथा शङ्कराचार्य के गुरु आचार्य गोविन्दपाद थे, शङ्कराचार्य की जीवनी से इनका नर्मदातट निवासी होना सिद्ध होता है। ये अपने समय के उद्भट विद्वान् थे।

आचार्य शङ्कर

- शङ्कराचार्य **अद्वैतवाद के प्रवर्तक** आचार्य माने जाते हैं।
- अद्वैतमत को **शाङ्करमत** या **शाङ्करदर्शन** भी कहते हैं।
- ब्रह्मसूत्र पर उपलब्ध भाष्यों में सर्वाधिक प्राचीन शाङ्करभाष्य (शारीरिक भाष्य) माना जाता है।
- शङ्कराचार्य का जन्म केरल प्रदेश की पूर्णा नदी के तटवर्ती ग्राम कलाडी में वैशाख शुक्ल **5** को **788** ई॰ में हुआ। इनके पिता का नाम **शिवगुरु** और माता का नाम **सुभद्रा** मिलता है।
- भगवान् शङ्कर की आराधना से पुत्र प्राप्ति होने के कारण इनका नाम शङ्कर रखा गया। बालक शङ्कर बाल्यावस्था से ही अद्भुत प्रतिभा एवं स्मरण शक्ति के धनी थे अतः सात वर्ष की आयु तक इन्होंने वेद, वेदान्त और वेदाङ्गों का विधिवत् अध्ययन कर

लिया।

- शङ्कराचार्य के नाम से लगभग 272 ग्रन्थ लिखे गये बताए जाते हैं, किन्तु यह कहना कठिन है कि वे सभी आद्य शङ्कराचार्य द्वारा लिखे गये हैं।
- आचार्य शङ्कर ने **'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'** एतदर्थ उन्होंने मायावाद की स्थापना की इसे विद्वानों ने अमोघमन्त्र बताया।
- शङ्कराचार्य के अनुसार सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् ब्रह्म का विवर्तमात्र है-
  जैसे हमें रज्जु में सर्प की भ्रान्ति हो जाती है, ठीक उसीप्रकार ब्रह्म तत्त्व में ही हमें जगत् की भ्रान्ति हो रही है। उन्होंने आत्मा को स्वतः सिद्ध माना।
- शंकर के परवर्ती वेदान्तदर्शन के आचार्यों की परम्परा अत्यन्त विशाल रही है। हम उनका संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं-
- **पद्मपादाचार्य**- शङ्कराचार्य के प्रथम शिष्य पद्मपादाचार्य थे। इनका पूर्वनाम **सइन्दन** था। दक्षिण के चोल प्रदेश मे इनका जन्म हुआ। पद्मपाद नाम इन्हें शङ्कराचार्य ने दिया। ये गुरु के परमभक्त एवं आज्ञापालक थे।
- **आचार्य मण्डनमिश्र-** इनका अन्य नाम सुरेश्वराचार्य भी था।ये रेवा नदी के तटवर्ती प्राचीन माहिष्मती के निवासी थे। मण्डन मिश्र अपने समय के मगध प्रदेश के सबसे बड़े विद्वान् और पूर्व मीमांसक थे।
- **आचार्य वाचस्पति मिश्र-** इनका जन्मस्थान मिथिला माना जाता है। इनके ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि ये अपने विषय के धुरन्धर विद्वान् तथा अद्वैतमत के प्रमुख आचार्य थे। विद्वानों ने इनका समय आठवीं शताब्दी के अन्त से लेकर नवम शती का प्रारम्भ माना है।इसके बाद के प्रायः सभी आचार्यों ने इनके वाक्यों को प्रमाणरूप में स्वीकार किया है। वाचस्पति मिश्र ने शाङ्करभाष्य पर **भामती टीका** का प्रणयन किया।
- **आचार्य सदानन्दयोगीन्द्र** ने अद्वैतवेदान्त पर अत्यन्त सरलशैली में **वेदान्तसार** नामक प्रकरणग्रन्थ की रचना की। इनका स्थितिकाल विद्वानों ने **सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध** निर्धारित किया है। यह सम्पूर्ण वेदान्तसिद्धान्तों का परिचायक ग्रन्थ है।
- **वेदान्तपरिभाषा** नामक उत्कृष्ट एवं अद्वैतसिद्धान्त के लिये अत्यन्त उपयोगी प्रकरणग्रन्थ की रचना **आचार्य धर्मराज अध्वरीन्द्र** ने की। इनका जन्मसमय 17 वीं शताब्दी का आरम्भ माना गया है।
- शङ्कराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्य के **नैष्कर्म्यसिद्धि** नामक ग्रन्थ से केवल इतना ज्ञात होता है कि आचार्य गौडपाद गोडप्रदेश के निवासी थे।
- वेदान्तदर्शन विशेषरूप से अद्वैतवेदान्त एकमात्र ब्रह्म को ही सत्य, नित्य और सर्वोपरि तत्त्व के रूप में मानता है।
- इसीकारण से वेदान्तदर्शन का प्रारम्भ ब्रह्मजिज्ञासा से होता है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (ब्रह्मसूत्र 1.1)
- ब्रह्म शब्द 'बृह् वृद्धौ' वृद्धि के अर्थ मे प्रयुक्त 'बृह्' धातु से मनिन् प्रत्यय करके 'ब्रह्म' शब्द

निष्पन्न हुआ हैं अर्थात् महान् ,व्यापक,निरवधिक,निरतिशय महत्त्व से युक्त तत्त्व ही ब्रह्म है।

- 'बृंहणाद् ब्रह्म' इस व्युत्पत्ति के अनुसार देश, काल तथा वस्तु आदि से अपरिछिन्न नित्य तत्त्व ही ब्रह्म है।

वेदान्तसार का मङ्गलाचरण

- वेदान्तसार के मङ्गलाचरण में ब्रह्म की वन्दना की गयी है।

अखण्डं सच्चिदानन्दमवाङ्मनसगोचरम्।
आत्मानमखिलाधारमाश्रयेऽभीष्टसिद्धये॥

- ग्रन्थ की निर्विघ्नसमाप्ति या त्रिविध दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये सत्य ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप, मन वाणी तथा इन्द्रियों के अविषय, सम्पूर्ण स्थावरजङ्गम रूप प्रपञ्च के आधारस्वरूप, अखण्ड परमात्मा का अभीष्ट (मनोरथ) की सिद्धि के लिये आश्रय ग्रहण करता हूँ।
- किसी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व मंगलाचरण करने की भारतीय परम्परा रही है। आचार्य सदानन्द ने वेदान्तदर्शन के प्रकरणग्रन्थ वेदान्तसार की निर्विघ्नसमाप्ति के लिये सच्चिदानन्द, अवाङ्मनसगोचर,सम्पूर्णसृष्टि के आधार स्वरूप, अखण्ड परमपिता परमात्मा की वन्दना की है।
- वेदान्तदर्शन एकमात्र परमब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करता है साथ ही आत्मा एवं ब्रह्म की एकता का भी प्रतिपादन करता है।
- यहाँ आत्मा के चार विशेषणों का प्रयोग किया गया है (i) अखण्डम् (ii) सच्चिदानन्दम् (iii) अवाङ्मनसगोचरम् (iv) अखिलाधारम्
- 'सच्चिदानन्दम्'- वेदान्तग्रन्थों में ब्रह्म के लिए इस विशेषण का प्रयोग किया गया है जो ब्रह्म भी तीन विशेषताओं की ओर संकेत करता है - सत्, चित्, और आनन्द।
- मङ्गलाचरण में अपने आराध्य देवता के स्मरण के पश्चात् आचार्य सदानन्द ने अपने गुरु अद्वयानन्द को नमन किया है -

अर्थतोऽप्यद्वयानन्दानतीतद्वैतभानतः।
गुरूनाराध्य वेदान्तसारं वक्ष्ये यथामति॥

जिनकी द्वैतभावना दूर हो गई है, यथार्थरूप से भी अखण्ड आनन्दस्वरूप अद्वयानन्द नामक गुरु की आराधना करके मैं (सदानन्द अपनी) बुद्धि के अनुसार वेदान्तसार को कहूँगा।

- उपनिषद् को प्रमाण मानकर चलने वाला शास्त्र वेदान्त कहा गया है।
और ब्रह्मसूत्र शारीरकसूत्र आदि उनके उपकारक ग्रन्थ हैं।

'वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च।'

वेदान्तशास्त्र

उपनिषद्	ब्रह्मसूत्र (शारीरकसूत्र)
प्रमाणस्वरूप	उपकारक (व्याख्या ग्रन्थ)

- वेदान्तशास्त्र में चार अनुबन्ध हैं - अधिकारी, विषय, सम्बन्ध और प्रयोजन।
  'तत्रानुबन्धो नामाधिकारिविषयसम्बन्धप्रयोजनानि '
- **वेदान्त का प्रथम अनुबन्ध अधिकारी**- अधिकारी तो वह जिज्ञासु प्रमाता है, जिसने वेद- वेदाङ्गों का विधिपूर्वक अध्ययन करके समस्त वेदान्त के अर्थ को सामान्यरूप से जान लिया है तथा इस जन्म में अथवा अन्य जन्मों में कामनाओं को पूर्ण करने वाले काम्यकर्म तथा शास्त्रों द्वारा निषेध किये गये कर्मो को छोड़ने के साथ-साथ नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त और उपासना कर्मो के अनुष्ठान से सम्पूर्णपापों से मुक्त, अत्यधिक निर्मल अन्तःकरण वाला जो साधन चतुष्टयसम्पन्न है, ऐसा प्रमाता पुरुष (इस ब्रह्मविद्या) वेदान्त का अधिकारी है।
- अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखिलवेदार्थोऽस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरस्सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता।
  अधिकारी के निरूपणान्तर्गत ही काम्यादि कर्मों का वर्णन किया गया है-
- 1. स्वर्ग आदि कामनाओं के साधनस्वरूप ज्योतिष्टोमयाग आदि काम्यकर्म हैं
  काम्यानि स्वर्गादीष्टसाधनानि ज्योतिष्टोमादीनि।
- 2. नरकादि अनिष्टस्थानों की प्राप्ति के साधनभूत ब्राह्मणहत्या, गोहत्या आदि निषिद्धकर्म है। **निषिद्धानि नरकाद्यनिष्टसाधनानि ब्राह्मणहननादीनि।**
  3. जिसके न करने से भविष्य में दुःख की सम्भावना हो, ऐसे सन्ध्यावन्दन आदि नित्यकर्म हैं।
  'नित्यान्यकरणे प्रत्यवायसाधनानि सन्ध्यावन्दनादीनि'
  4. पुत्र जन्मादि के अवसर पर किये जाने वाले जातेष्टि यज्ञ आदि नैमित्तिक कर्म है **नैमित्तिकानि पुत्रजन्माद्यनुबन्धीनि जातेष्ट्यादीनि।**
  5. पाप के क्षय करने के लिये साधन बनने वाले चान्द्रायण आदि व्रत प्रायश्चित्त कर्म हैं। **प्रायश्चित्तानि पापक्षयसाधनानि चान्द्रायणादीनि।**
  6. सगुणब्रह्म को विषय बनाने वाला मानसिक व्यापार ध्यान ही जिनका स्वरूप है उन शाण्डिल्यविद्या आदि को उपासनाकर्म कहते हैं।
  उपासनानि सगुणब्रह्मविषयमानसव्यापाररूपाणि शाण्डिल्यविद्यादीनि।
- नित्य नैमित्तिक और प्रायश्चित्त कर्मों का परम प्रयोजन- बुद्धि की शुद्धि एवं उपासना रूप कर्मों का मुख्य प्रयोजन -चित्त की एकाग्रता है।
- नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित्त कर्मों का गौण प्रयोजन- पितृलोक प्राप्ति तथा उपासना का

गौण प्रयोजन - सत्यलोक (देवलोक की प्राप्ति)।

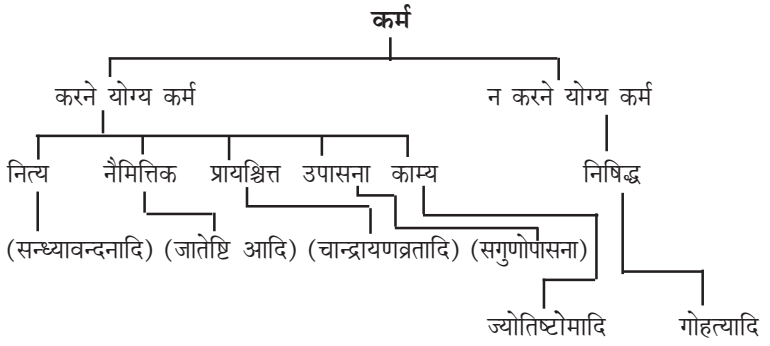

- **साधनचतुष्टय -** (i) नित्य एवं अनित्य वस्तुविवेक, (ii) इहलौकिक एवं पारलौकिक फल को भोगने के प्रति वैराग्य, (iii) शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा आदि छः प्रकार की सम्पत्ति तथा (iv) मोक्षप्राप्ति के प्रति इच्छा- ये चार साधन हैं।

  साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविरागशमादिषट्कसम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि

- इनमें एकमात्र ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अतिरिक्त अन्य सभी कुछ अनित्य है इसप्रकार समझना ही **नित्य-अनित्य-वस्तुविवेक** है।
- इस लोक की माला, चन्दन, सुन्दरी आदि भोग विलास विषयक सामग्री कर्म द्वारा उत्पन्न होने के कारण अनित्य के समान है। इसीप्रकार पारलौकिक स्वर्ग आदि विषयभोगों के कर्मजन्य होने से अनित्य होने के कारण उनके प्रति भी नितान्त वैराग्यभाव ही **'इहामुत्रार्थफलभोग विराग'** है।
- ऐहिकानां स्रक्चन्दनवनितादिविषयभोगानां कर्मजन्यतयाऽनित्यत्व-
  वदामुष्मिकाणामप्यमृतादिविषयभोगानामनित्यतया तेभ्यो नितरां विरतिरिहा
  मुत्रार्थफलभोगविरागः

साधनचतुष्टय

1. **नित्यानित्यवस्तुविवेक-** नित्य अनित्य वस्तु का विवेक।
2. **इहामुत्रार्थफलभोगविराग-** इस लोक एवं परलोक विषयक भोगने के प्रति वैराग्यभाव।
3. **शमादिषट्कसम्पत्ति-** शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा इन छः प्रकार की सम्पत्ति से सम्पन्न होना
4. **मुमुक्षुत्व-** मोक्ष की प्रबल इच्छा का होना।

शमादिषट्कसम्पत्ति

शमादयस्तु शमदमोपरतितितिक्षासमाधानश्रद्धाख्याः।

- **1. शम-** श्रवण मनन और निदिध्यासन को छोड़कर उनसे भिन्न विषयों से मन को हटा लेने को शम कहते हैं।

शमस्तावच्छ्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः।

- **2. दम-** श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को श्रवणादि के अतिरिक्त विषयों से हटाने को दम कहते हैं। **'दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्'**
- **3. उपरति-** अन्तरिन्द्रिय मन और श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को अपने-अपने विषय से निवृत्त कर लेने पर श्रवण आदि के अतिरिक्त विषयों से इनका उपरत हो जाना अर्थात् फिर से विषयों की ओर प्रवृत्त होने का उत्साह न रह जाने से स्थिर हो जाना उपरति है। **निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य उपरमणमुपरतिः अथवा विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः।**
- अथवा सन्ध्यावन्दन अग्निहोत्र आदि अवश्य करणीय वेदविहित कर्मों का श्रुति और स्मृति में बताई गई विधि से परित्याग कर देना अर्थात् संन्यास ग्रहण कर लेना ही उपरति है।

4. तितिक्षा- शीत-उष्ण, मान -अपमान, लाभ -हानि, जय- पराजय, निन्दा-स्तुति, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों को सहन करना तितिक्षा है।

'तितिक्षा शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता'

- **5. समाधान-** निगृहीत चित्त का श्रवणादि में तथा श्रवणादि के अनुकूल गुरुशुश्रूषा, वेदान्तग्रन्थों का सम्पादन और उनकी रक्षा करना आदि विषयों में स्थिर हो जाना समाधान है। **'निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानम्'**
- **6. श्रद्धा -** गुरू द्वारा उपदिष्ट वेदान्त के वाक्यों में विश्वास श्रद्धा है।

गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा।

- **मुमुक्षुत्व -** मोक्ष की इच्छा ही मुमुक्षुत्व है। **मुमुक्षुत्वम् मोक्षेच्छा**

एवम्भूतः प्रमाताधिकारी। इसप्रकार की विशेषताओं से युक्त हुआ प्रमाता अधिकारी है।

शमादिषट्कसम्पत्ति

शम दम उपरति तितिक्षा समाधान श्रद्धा

- **वेदान्त का द्वितीय अनुबन्ध- विषय** वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय -जीव और ब्रह्म की एकता है। विषयो जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयं तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्।
- शुद्धचैतन्य प्रमा का विषय है, क्योंकि समस्त वेदान्तवाक्यों का अभिप्राय उसी शुद्धचैतन्य के प्रतिपादन में निहित है।
- **वेदान्त का तृतीय अनुबन्ध-सम्बन्ध**

ज्ञान के विषय उन जीव और ब्रह्म का ऐक्य एवं उनका प्रतिपादन करने वाले उपनिषद्रूप प्रमाणवाक्यों का परस्पर बोध्य-बोधकभाव सम्बन्ध है।

सम्बन्धस्तु तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः।

- **वेदान्त का चतुर्थ अनुबन्ध-प्रयोजन** चतुर्थ अनुबन्ध उस जीव एवं ब्रह्म के ऐक्यविषयक ज्ञान के साथ अज्ञान की निवृत्तिपूर्वक अपने स्वरूप का परिचय होने से चरम आनन्द की प्राप्ति ही मुख्य प्रयोजन है।

  * प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः स्वस्वरूपानन्दावाप्तिश्च।

  * ''तरति शोकमात्मवित्'' इत्यादि श्रुतेः ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति '' इत्यादि श्रुतेश्च। ''आत्मज्ञानी शोक से तर जाता है'' इत्यादि तथा ''ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही हो जाता है'' इत्यादि श्रुति का कथन प्रमाण है।

अनुबन्ध चतुष्टय

अधिकारी | विषय | सम्बन्ध | प्रयोजन

- **अध्यारोप -** रस्सी में सर्प के आरोप के समान, वस्तु में अवस्तु का आरोप ही अध्यारोप है। **'असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद्वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोपः'**
- **वस्तु और अवस्तु-** सच्चिदानन्द, अनन्त और अद्वैत ब्रह्म वस्तु है तथा अज्ञान आदि से लेकर सम्पूर्ण जडप्रपञ्च अवस्तु है।

  वस्तु सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म अज्ञानादिसकलजडसमूहोऽवस्तु।
- वेदान्तदर्शन के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र वस्तु है तथा शेष सम्पूर्ण चराचरप्रपञ्च को अवस्तु बताया गया है।
- जिसप्रकार वस्तु (रस्सी) में अवस्तु (सर्प) का आरोप ही अध्यारोप है, उसी प्रकार वस्तु (ब्रह्म) में अवस्तु (जगत्) का आरोप ही अध्यारोप है।
- **अज्ञान-** अज्ञान तो सत् और असत् दोनों से विलक्षण होने से अनिर्वचनीय,त्रिगुणात्मक, ज्ञान का विरोधी तथा भाव रूप से 'यत्किञ्चित्' ऐसा कहते हैं।

  अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति।
- **अज्ञान के भेद-** अज्ञान के दो भेद हैं - समष्टि और व्यष्टि
- **समष्टि -** यह अज्ञान समष्टि के अभिप्राय से एक है और व्यष्टि के अभिप्राय से अनेक कहा जाता है। जैसे- समष्टि (समूह) के अभिप्राय से यह वन है इसप्रकार एकत्व का कथन किया जाता है, या जल बिन्दुओं की समष्टि के अभिप्राय से यह जलाशय है, इसप्रकार एकत्व का कथन किया जाता है।
- 'समष्टि' शब्द का प्रयोग यहाँ समुदाय, समूह या संघात अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये हुआ है।
- **व्यष्टि-** यह एक का सूचक है। व्यष्टि का अभिप्राय वृक्ष है। इसीप्रकार एक जीव में स्थित अज्ञान का कथन उसके व्यष्टिरूप को प्रकट करता है।

इदमज्ञानं समष्टिव्यष्टाभिप्रायेणैकमनेकमिति च व्यवह्रियते।
तथाहि वृक्षाणां समष्ट्यभिप्रायेण वनमित्येकत्वव्यपदेशो यथा वा जलानां समष्ट्यभिप्रायेण जलाशय इति।

- समष्टि - सम् + ✓अश् (व्याप्तौ संघाते च) +क्तिन् = सभी को व्याप्त करने वाला।
- व्यष्टि - वि + ✓अश् (व्याप्तौ संघाते च) + क्तिन् = सीमित स्थान में रहने वाला।
- वेदान्तदर्शन में समष्टि का अर्थ 'माया' तथा व्यष्टि के लिए 'अविद्या' शब्द का प्रयोग किया गया है।

''सत्त्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते '' (पञ्चदशी 1/16)

- अज्ञान की यह समष्टि (माया) उत्कृष्ट (ईश्वर) उपाधि होने के कारण विशुद्धसत्त्व प्रधान से युक्त होती है। इससे उपहित हुआ चैतन्य समस्त अज्ञानराशि का प्रकाशक होने से सर्वज्ञता, सर्वेश्वरता, सर्वनियामकता आदि गुणों से युक्त, अव्यक्त, अन्तर्यामी, जगत् का कारण और ईश्वर कहा जाता है। ''यः सर्वज्ञः सर्ववित् '' इति श्रुतेः। 'जो सर्वज्ञाता सर्ववित् है' इत्यादि श्रुति प्रमाण है।
- वेदान्त के सृष्टिक्रम में ब्रह्म के पश्चात् ईश्वर का स्थान है। ईश्वर को जगत् का कारण होने से कारण शरीर, आनन्द की प्रचुरता के कारण आनन्दमयकोष, सभी कुछ विलीन होने के कारण सुषुप्ति एवं लयस्थान कहा गया है।
- इयं व्यष्टिर्निकृष्टोपाधितया मलिनसत्त्वप्रधाना।एतदुपहित चैतन्यमल्पज्ञत्वानीश्वरत्वादि गुणकं प्राज्ञ इत्युच्यत एकाज्ञानावभासकत्वात्।
- व्यष्टि निकृष्ट उपाधि से युक्त होने के कारण मलिनसत्त्वप्रधान होती है। इस उपाधि से युक्त चैतन्य अल्पज्ञता एवं अशक्तता आदि गुणों वाला होने से, व्यष्टिगत एक ही अज्ञान का प्रकाशक होने के कारण 'प्राज्ञ' कहा गया है।
- इस (जीव) की व्यष्टिरूप उपाधि, अहङ्कार आदि का कारणरूप होने से कारण शरीर तथा आनन्द की प्रचुरता एवं चैतन्य को कोश के समान ढक लेने के कारण आनन्दमयकोश।

शरीर	अभिमानी	कोष	अवस्था
स्थूल	समष्टि - वैश्वानर व्यष्टि - विश्व	अन्नमय मनोमय	जाग्रत
सूक्ष्म	समष्टि - सूत्रात्मा व्यष्टि - तैजस्	प्राणमय विज्ञानमय	स्वप्न
कारण	समष्टि - ईश्वर व्यष्टि - प्राज्ञ	आनन्दमय	सुषुप्ति

- सबका उपरम (विलयन) होने से सुषुप्ति एवं स्थूल तथा सूक्ष्मशरीर आदि प्रपञ्च के विलय की अधिकता होने के कारण 'लयस्थान' भी कहलाती है।

- समष्टिरूप अज्ञान से उपहित चैतन्य की 'ईश्वर' संज्ञा है।
- व्यष्टिरूप अज्ञानों से उपहित चैतन्य की जीव अथवा 'प्राज्ञ' संज्ञा है।
- प्राज्ञ को ही सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, सभी जीवों की उत्पत्ति एवं प्रलय के स्थान का कारण बताया गया है।
  ''एष सर्वेश्वरः, एषः सर्वज्ञः एषः अन्तर्यामि, एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।''
- समष्टिव्यष्टिगत इन दोनों अज्ञानों एवं इनकी उपाधियों से युक्त ईश्वर और प्राज्ञ दोनों चैतन्यों का आधार उपाधिरहित शुद्धचैतन्य है।
- वही 'तुरीय' इस नाम से भी कहा जाता है। अद्वैतब्रह्म को ही चतुर्थ मानते है।

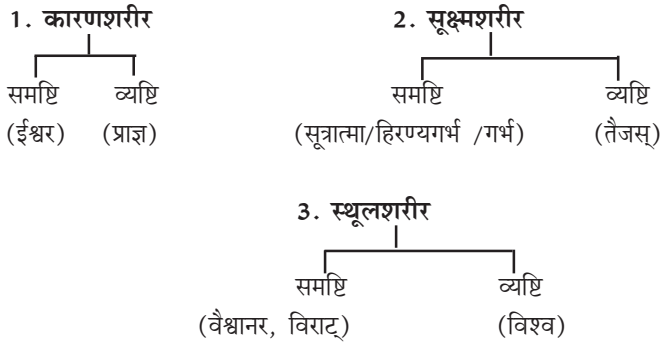

अज्ञान की शक्ति -

- अज्ञान की दो शक्तियाँ हैं - आवरण और विक्षेप।
  अस्याज्ञानस्यावरणविक्षेपनामकमस्तिशक्तिद्वयम्।
- प्रमाता के सच्चिदानन्द स्वरूप को जो शक्ति ढक देती है, वह आवरण शक्ति है।
- सम्पूर्ण नामरूपात्मक जगत् को उत्पन्न करने वाली शक्ति है - विक्षेप शक्ति।
- तमोगुण प्रधान होती है- विक्षेप शक्ति।
- वेदान्त की दृष्टि में आत्मा का बन्धन अथवा मोक्ष सम्भव नहीं है यह तो केवल आभासमात्र है। रस्सी में सर्प के समान अथवा सीप में चाँदी के समान।
  हस्तामलक नामक ग्रन्थ में आयी हुई कारिका -
  ''घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं यथा मन्यते निष्प्रभं चातिमूढः।
  तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा।।''
  जिस प्रकार मेघ से ढका हुआ दृष्टि वाला मूर्ख व्यक्ति, बादल से ढके हुए सूर्य को प्रकाशरहित मानता है उसीप्रकार मूढ सामान्य दृष्टि वालों को आत्मा (जन्म - मरणादि बन्धनों से) बँधा हुआ सा प्रतीत होता है।

अज्ञान माया की शक्ति

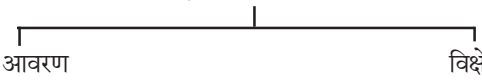

(सत्य को आवृत करना) (सत् में असत् की उद्भावना)

आवरण एवं विक्षेप नामक दो महत्त्वपूर्ण शक्तियों से युक्त अज्ञान से उपहित चैतन्य सूक्ष्मशरीर से लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् प्रपञ्च का उपादान और निमित्त दोनों है।

- शक्तिद्वयवदज्ञानोपहितं चैतन्यं स्वप्रधानतया निमित्तं स्वोपाधिप्रधानतयोपादानं च भवति।यथा-लूता तन्तुकार्यं प्रति स्वप्रधानतया निमित्तं स्वशरीरप्रधानतयोपादानं च भवति।
- जिसप्रकार मकड़ी अपने जाला निर्माणरूप कार्य के प्रति अपने शरीर के चैतन्य की प्रधानता के कारण निमित्तकारण है तथा अपने शरीर से निकलने वाले लारवे की प्रधानता की दृष्टि से उपादानकारण भी है।
- उसीप्रकार अज्ञान से उपहित आत्मा अपने चैतन्य की प्रधानता होने से दृश्यमान सांसारिक प्रपञ्च का निमित्तकारण तथा अज्ञान की प्रधानता के समय उपादान कारण होता है।
- अज्ञानोपहित चैतन्य के लिए वेदान्त में ईश्वर, चैतन्य एवं आत्मा आदि अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है।
- लूता मकड़ी का नाम है। मकड़ी की विशेषता यह है कि अपने द्वारा निर्मित जाले मे अन्य किसी बाह्य उपादान का सहयोग नहीं लेती है।

सूक्ष्मशरीर (17 अवयव)

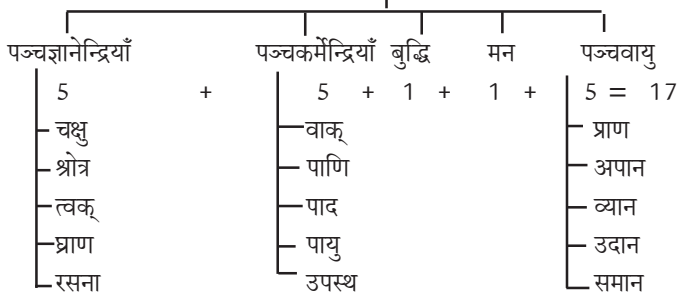

अपञ्चीकृत सूक्ष्मशरीर (सात्त्विक अंशों से ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति)

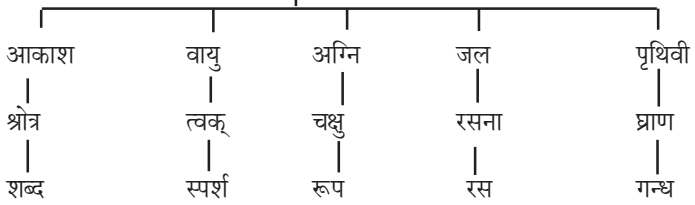

मकड़ी लूता — उपादान कारण (स्वशरीरप्रधानतया)
निमित्त कारण - (चैतन्यस्वप्रधानतया)

- तमोगुण की प्रधानता वाली विक्षेपशक्ति से युक्त अज्ञान से उपहित चैतन्य से सर्वप्रथम आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है।
- तमःप्रधानविक्षेपशक्तिमदज्ञानोपहितचैतन्यादाकाश आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेऽपोद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते।

सूक्ष्मशरीर -

- पञ्चीकृत महाभूतों से स्थूलशरीर उत्पन्न होते हैं।
  लिङ्ग्यते ज्ञाप्यते प्रत्यगात्मसद्भावः एभिरिति लिङ्गानि,
- सूक्ष्मशरीर को लिङ्गशरीर भी कहते हैं 'लिङ्गानि च तानि शरीराणि इति लिङ्गशरीराणि'।
- सूक्ष्मशरीर में **सत्रह अवयव** होते हैं।
  सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिङ्गशरीराणि। अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं बुद्धिमनसी कर्मेन्द्रियपञ्चकं वायुपञ्चकं चेति।
  पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ +बुद्धि +मन +पञ्चकर्मेन्द्रियाँ + पञ्चवायु ही सूक्ष्मशरीर के सत्रह अवयव हैं।
- श्रोत्र,त्वक्, चक्षुः, जिह्वा, घ्राण=**पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ** है, यह आकाशादि सूक्ष्मभूतों के सात्त्विक अशों से क्रमशः अलग-अलग उत्पन्न होते हैं।
- **बुद्धि-** निश्चय करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति ही बुद्धि है।
  बुद्धिर्नाम निश्चयात्मिकान्तः करणवृत्तिः।
- **मन-** संकल्प - विकल्प करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति मन है।
  मनो नाम संकल्पविकल्पात्मिकान्तःकरणवृत्तिः।
- इन दोनों में ही चित्त और अहङ्कार का अन्तर्भाव हो जाता है ये सभी वस्तु आकाशादि में स्थित सात्त्विक अंशों के मिश्रित अंशों से उत्पन्न होते है।
- पञ्चज्ञानेन्द्रियों सहित यह बुद्धि ही **विज्ञानमयकोश** कहलाती है।
- पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि एवं मन ये सात अपञ्चीकृत पञ्चभूतों के सात्त्विक अंशों से उत्पत्र होते है।
- पञ्चज्ञानेन्द्रियों के साथ मन के मिलने पर '**मनोमयकोश**' का निर्माण होता है। इन्हें आत्मा को ढँकने के कारण **कोशसंज्ञा** भी कहते हैं।
- पञ्चदशीकार ने भी सूक्ष्मशरीर को सत्रह अवयव से युक्त बताया है।
  बुद्धिः कर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैर्मनसा धिया।
  शरीरं सप्तदशभिः सूक्ष्मं तल्लिङ्गमुच्यते॥
  कुछ विद्वान् चित्त और अहङ्कार को भी परिभाषित करते हैं-
- **चित्त-** अनुसंधानात्मिकान्तकरणवृत्तिः चित्तम्।
- **अहङ्कार-** अभिमानात्मिकान्तःकरणवृत्तिरहङ्कारः।

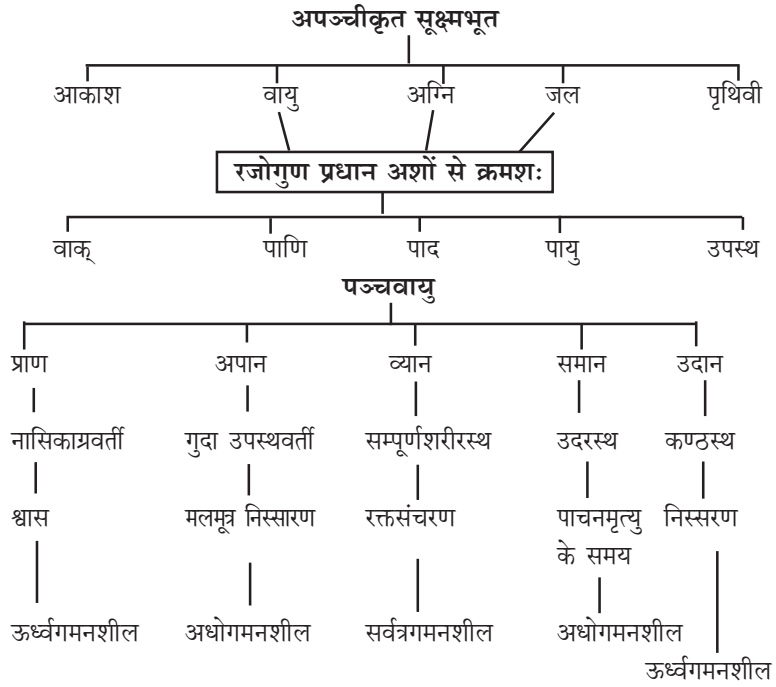

पञ्चकोश

1. अन्नमयकोश 2. प्राणमयकोश 3. मनोमयकोश 4. विज्ञानमयकोश
5. आनन्दमयकोश

➢ कारण शरीर के निर्माण में विज्ञानमय, मनोमय तथा प्राणमय इन कोषत्रय की महती भूमिका रहती है।

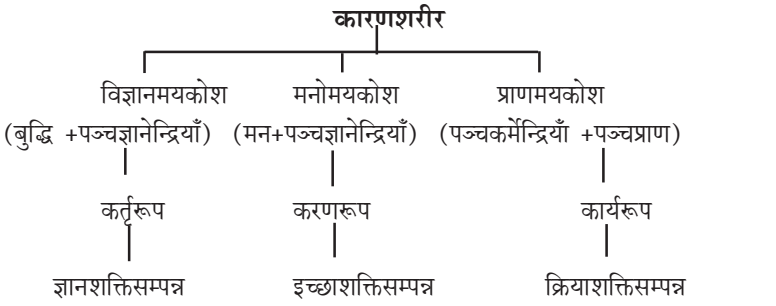

➢ एतेषु कोशेषु मध्ये विज्ञानमयो ज्ञानशक्तिमान् कर्तृरूपः ---- ज्ञानशक्ति से युक्त विज्ञानमयकोश कर्तारूप है।

➢ इच्छाशक्ति से युक्त मनोमयकोश करणरूप है। मनोमय इच्छाशक्तिमान् करणरूपः।

- क्रियाशक्ति से युक्त प्राणमयकोश कार्यरूप है। प्राणमयः क्रियाशक्तिमान् कार्यरूपः
- ये तीनों कोश मिलकर सूक्ष्मशरीर कहे जाते हैं। **एतत्कोशत्रयं मिलितं सत्सूक्ष्मशरीरमित्युच्यते।**
- समष्टि से उपहित चैतन्य सर्वत्र व्याप्त होने से तथा ज्ञान, इच्छा एवं क्रियाशक्ति से सम्पन्न होने के कारण क्रमशः सूत्रात्मा,हिरण्यगर्भ और प्राण कहा जाता है।
- व्यष्टिरूप उपाधि से युक्त यह चैतन्य, तेजोयुक्त अन्तःकरण उपाधि से युक्त होने से तैजस् होता है।

पञ्चीकरण - ''द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः।
स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्पञ्चपञ्च ते।।

- पञ्चीकृत (महाभूतों) को ही **स्थूलभूत** कहते हैं।
  सर्वप्रथम प्रत्येक सूक्ष्मभूत को समान दो भागों में विभाजित करके, तत्पश्चात् प्रथम पाँच में से प्रत्येक को चार भागों में विभक्त करके, अपने अपने अंश को छोड़कर अन्य भूतों के अर्धांश के साथ जोड़ने से वे पाँच सूक्ष्मभूत स्थूलभूत हो जाते हैं।

पञ्चीकरण प्रक्रिया					
	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथिवी
	1/2	1/2	1/2	1/2	1/2
1/8	वायु	आकाश	आकाश	आकाश	आकाश
1/8	अग्नि	अग्नि	वायु	वायु	वायु
1/8	जल	जल	जल	अग्नि	अग्नि
1/8	पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी	जल

पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत

- 'छान्दोग्योपनिषद्' (6.3.3) में सर्वप्रथम अग्नि की उत्पत्ति कही गई है तथा उसके बाद अग्नि से जल एवं जल से पृथिवी की उत्पत्ति का कथन करके, उनके त्रिवृत्करण द्वारा स्थूलसृष्टि की उत्पत्ति बतायी गयी है।
- त्रिवृत्करण के अनुसार अग्नि, जल और पृथिवी इन तीनों को सर्वप्रथम दो बराबर भागों में विभाजित किया जाता है। पुनः प्रथम तीन अर्धांशों को फिर से दो भागों में विभाजित करके उनका एक-एक भाग पूर्व के अर्धांश में जोड़ दिया जाता है। जिससे त्रिवृत् भूत का निर्माण होता है।
- पञ्चीकृत महाभूतों में भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् इत्यादि नाम वाले ऊपर-ऊपर विद्यमान लोकों की और अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल नामक अधोवर्ती भुवनों की, ब्रह्माण्ड की तथा उसमें विद्यमान चार प्रकार के स्थूलशरीरों की एवं उनके योग्य अन्नपान आदि की उत्पत्ति होती है।
- स्थूलशरीर चार प्रकार का होता है- 1. जरायुज 2. अण्डज 3. उद्भिज 4. स्वेदज

- जरायु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य पशु आदि जरायुज नामक स्थूल शरीर हैं।
- अण्डों से उत्पन्न होने वाले- पक्षी, सर्प आदि अण्डज हैं।
- पृथ्वी को भेदकर उत्पन्न होने वाले- लता, वृक्ष आदि उद्भिज्ज हैं, तथा पसीने से पैदा होने वाले जू, मच्छर आदि स्वेदज नामक स्थूलशरीर हैं।
- चतुर्विधसकलस्थूलशरीरमेकानेकबुद्धिविषयतया वनवज्जलाशयवद्वा समष्टिर्वृक्षवज्जलवद्वा व्यष्टिरपि भवति।

स्थूलशरीर
- जरायुज - (मनुष्य, पशु आदि)
- अण्डज - (पक्षी, सर्प आदि)
- उद्भिज - (तृण, वृक्ष आदि)
- स्वेदज - (यूका , मच्छर आदि)

स्थूलशरीरों की

समष्टि — व्यष्टि

वैश्वानर (विराट्) —— अभेद (अधिष्ठातृ देवता) —— (अभेद विश्व)

1. पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ -

इन्द्रियाँ	**देवता**	**विषय**	
1.श्रोत्र -	दिक् -	शब्द	ग्रहण करना
2. त्वक् -	वायु -	स्पर्श	
3. चक्षु -	सूर्य -	रूप	
4.रसना -	वरुण -	रस	
5.घ्राण -	अश्विन् -	गन्ध	

2. पञ्चकर्मेन्द्रियाँ -

इन्द्रिय	**देवता**	**विषय**	
1.वाक्	अग्नि	बोलना	क्रियायें सम्पादित करना
2.पाणि	इन्द्र	आदान प्रदान	
3.पाद	उपेन्द्र	चलना	
4.पायु	यम	विसर्जन	
5.उपस्थ	प्रजापति	आनन्द	

3. अन्तरिन्द्रियाँ -

इन्द्रिय	**देवता**	**विषय**	
1.मन	चन्द्र	संकल्प- विकल्प	
2.बुद्धि	ब्रह्म	निश्चय	करना
3.अहङ्कार	शिव	गर्व	
4.चित्त	विष्णु	स्मरण	

- कारणशरीर, समष्टि एवं व्यष्टि की दृष्टि से जिसमें स्थित चैतन्य ईश्वर एवं प्राज्ञ कहलाता है।
- सूक्ष्मशरीर, समष्टि एवं व्यष्टि की दृष्टि से जिसमें स्थित चैतन्य क्रमशः हिरण्यगर्भ (सूत्रात्मा) या तैजस् कहा जाता है।
- स्थूलशरीर, जिसमें स्थित चैतन्य समष्टि एवं व्यष्टि से क्रमशः वैश्वानर (विराट्) एवं विश्व कहलाता है।
- महाप्रपञ्च तथा उससे उपहित चैतन्य से अभिन्न होकर परमशुद्ध चैतन्य 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस महावाक्य का वाच्यार्थ होता है तथा वही अलग- अलग होने की स्थिति में लक्ष्यार्थ भी होता है।
- जिस प्रकार एक लोहे के गोले को अग्नि में डालने पर वह तपकर लाल हो जाता है तथा उससे जलने पर मैं लोहे से जल गया इसप्रकार कहा जाता है जबकि शक्ति लोहे में न होकर अग्नि में होती है।

अपवाद - अपवादो नाम रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववद्वस्तु विवर्तस्यावस्तुनोऽज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्।

- रस्सी में भ्रान्तिवश प्रतीत होने वाले सर्प की पुनः रस्सीमात्र के रूप में प्रतीति के समान ब्रह्मरूप वस्तु में मिथ्याप्रतीति के कारण अवस्तुरूप अज्ञानादिप्रपञ्च में, पुनः ब्रह्मरूप सत्यवस्तु का भान होना ही वस्तुतः अपवाद है।

''सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः।
अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः॥

- अपने मूलरूप का परित्याग करके अन्यरूप को ग्रहण करना ही विकार कहा गया है अपने रूप को बिना छोडे अन्य वस्तु की मिथ्याप्रतीति विवर्त कहलाता है।
- जैसे - दूध का दही के रूप में परिवर्तित होना 'विकार' है, क्योंकि दही बनने के बाद उसे पुनः दूध के रूप में बनाना असम्भव है। अपने रूप का त्याग करके ही दूध दही बनता है। इसी प्रक्रिया को विकार या परिणाम भी कहा जाता है।
- **सुख - दुःखरूप** भोग का स्थान रूप ये उत्पन्न हुए सभी चार प्रकार के स्थूलशरीर, भोग्यरूप अन्न पान आदि इसके आयतनभूत भूः, भुवः, स्वः आदि चौदहलोक एवं उन भुवनों का आधारभूत ब्रह्माण्ड यह सब अपने कारण रूप पञ्चीकृत महाभूतों में (विलीन) हो जाता है।

एतद्भोगायतनं चतुर्विधसकलस्थूलशरीरजातं रूपद् भोग्यरूपान्नपानादि-कमेतदायतनभूतभूरादिचतुर्दशभुवनान्येतदायतनभूतं ब्रह्माण्डं चैतत्सर्वमेतेषां कारणरूपं पञ्चीकृतभूतमात्रं भवति।

तत्त्वमसि महावाक्यार्थ-

- अज्ञान आदि व्यष्टि इसकी उपाधि अल्पज्ञत्व आदि विशेषताओं से युक्त चैतन्य (अर्थात् जीव) इसकी उपाधि से रहित शुद्धचैतन्य ये तीनों (एक साथ) तप्तलोहपिण्ड के समान अभिन्न प्रतीत होने के कारण 'त्वम्' पद के वाच्यार्थ होते हैं।

- इस उपाधि से युक्त आधारभूत अनुपहित आनन्दरूप तुरीयचैतन्य 'त्वम्'पद का लक्ष्यार्थ होता हैं।
- अनुपहित शुद्धचैतन्य 'तत्' एवं 'त्वम्' इन दोनों पदों का लक्ष्यार्थ है इसीलिए 'तत्' एवं 'त्वम्' ये दोनों पद यहाँ लक्षण है तथा शुद्धचैतन्य लक्ष्य है।
- 'तत्त्वमसि' (वह तू है) इत्यादि वाक्य तीन सम्बन्धों से अखण्ड अर्थ का बोध कराने वाला होता है।
- समानाधिकरण्य, विशेषणविशेष्यभाव एवं लक्ष्यलक्षणभाव ये तीन सम्बन्ध होते हैं।
- **चार महावाक्यों** की विशेषचर्चा वेदान्तदर्शन में की गई है-

महावाक्य	**उपनिषद्**	**वेद**
1. प्रज्ञानं ब्रह्म	ऐतरेयोपनिषद् -5	ऋग्वेद
2. तत्त्वमसि	छान्दोग्योपनिषद् -6.8.	सामवेद
3. अहं ब्रह्मास्मि	बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.10	यजुर्वेद
4. अयमात्मा ब्रह्म	माण्डूक्योपनिषद् -2	अथर्ववेद

- महावाक्यों का वर्ण्यविषय ब्रह्म के स्वरूप एवं अद्वैत का प्रतिपादन करना है।
- 'तत्त्वमसि' महावाक्य वस्तुतः उपदेशवाक्य है। जो एक गुरू द्वारा अधिकारी प्रमाता को उपदेश रूप में दिया जाता है 'तत्त्वमसि' - यह ब्रह्म और जीव की एकता बताता है।
- यहाँ लक्ष्यलक्षणसम्बन्ध को **'भागलक्षणा'** भी कहा गया है।

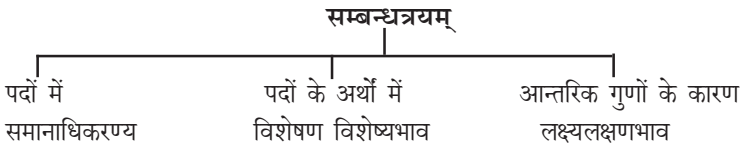

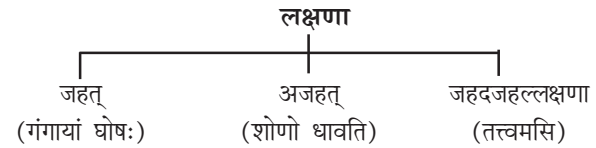

- 'अहं ब्रह्मास्मि' **अनुभववाक्य** है। 'तत्त्वमसि' **उपदेशवाक्य** है।
- 'अहं ब्रह्मास्मि' में ब्रह्माकाराकारिचित्तवृत्ति तथा तद्गत चिदाभास दोनों की आवश्यकता होती है'ब्रह्मास्मीत्यखण्डाकाराकारिता चित्तवृत्तिरुदेति।'
- वेदान्त की दृष्टि में अधिकारी को गुरु अध्यारोप एवं अपवादन्याय से 'तत्त्वमसि' महावाक्य के तत् एवं त्वम् पदों के अर्थों को भली प्रकार समझाकर उसके बाद अखण्ड अर्थ का बोध कराता है। जिसके परिणामस्वरूप उसके हृदय में अखण्ड आकार से आकारित इस प्रकार की चित्तवृत्ति का उदय होता है कि मैं ही नित्य, शुद्ध,बुद्ध, मुक्त,

सत्यस्वभाव, परमानद स्वरूप, अनन्त एवं अद्वैतब्रह्म हूँ।

➢ जीव और ब्रह्म का यह अखण्डार्थवाक्य का बोध कराता है।

लक्षणा-

1. जहद्लक्षणा 2. अजहल्लक्षणा 3.जहदजहल्लक्षणा

1. **जहद्लक्षणा-** इसे लक्षणलक्षणा भी कहते हैं। जो अपने मूल अर्थ को त्याग दें और दूसरा अर्थ ग्रहण करें।
2. **अजहल्लक्षणा-** जो अपने अर्थ को न छोड़े वह उपादान लक्षणा या अजहल्लक्षणा होती है।
3. **जहदजहल्लक्षणा-** जो अपने मूल अर्थ को त्याग दें और एक अंश का बोध कराये वह जहदजहल्लक्षणा है। इसे **भागलक्षणा** भी कहते हैं।

➢ तत्त्वमसि वाक्य का बोध जहदजहल्लक्षणा या भागलक्षणा से होता है।

षड्लिङ्ग

1.उपक्रम 2.उपसंहार 3.अभ्यास 4.अपूर्वता 5.फल 6.अर्थवाद

आत्मदर्शन के उपाय

श्रवण मनन निदिध्यासन समाधि- अनुष्ठान

➢ श्रवण मनन, निदिध्यासनसमाध्यनुष्ठानस्यापेक्षितत्वात्तेऽपि प्रदर्श्यन्ते।
इस प्रकार अपने ही स्वरूप 'चैतन्य' के साक्षात्कार होने तक श्रवण, मनन, निदिध्यासन, समाधि आदि अनुष्ठानों के अपेक्षित होने के कारण वे भी प्रदर्शित किए जा रहे हैं।

➢ **श्रवण-**'श्रवणं नाम षड्विधलिङ्गैशेषवेदान्तानामद्वितीये वस्तुनि तात्पर्यावधारणम्। सम्पूर्ण वेदान्तसूत्रों का, अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में ही तात्पर्य है, यह निश्चय करना ही वस्तुतः श्रवण है।

➢ **षड्लिङ्ग-**लिङ्गानि तूपक्रमोपसंहाराभ्यासापूर्वताफलार्थवादोपपत्त्याख्यानि। उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद तथा उपपत्ति नामक ये छः लिङ्ग हैं।

➢ **उपक्रम एवं उपसंहार-** तत्र प्रकरणप्रतिपाद्यस्यार्थस्य तदाद्यन्तयोरुपपादनमुपक्रमोपसंहारौ। छः लिङ्गों में प्रकरण में प्रतिपादन योग्य पदार्थ का उसके प्रारम्भ एवं अन्त में प्रतिपादन करना क्रमशः उपक्रम एवं उपसंहार है।

➢ **अभ्यास-**प्रकरणप्रतिपाद्यस्य वस्तुनस्तन्मध्ये पौन्यः पुन्येन प्रतिपादनमभ्यासः। प्रकरण में प्रतिपादित वस्तु का बीच-बीच में बार-बार प्रतिपादन करना ही **अभ्यास** है।

➢ **अपूर्वता** - प्रकरणप्रतिपाद्यस्याद्वितीयवस्तुनः प्रमाणान्तराविषयी करणमपूर्वता। प्रकरण में प्रतिपादित अद्वितीय वस्तु को अन्य प्रमाणों से अगम्य वर्णित करना **'अपूर्वता'** है।

➢ **फल-** फलं तु प्रकरणप्रतिपाद्यस्यात्मज्ञानस्य तदनुष्ठानस्य वा तत्र तत्र श्रूयमाणं प्रयोजनम्।

प्रकरण में प्रतिपादित करने योग्य आत्मज्ञान अथवा उसके अनुष्ठान के प्रसंग में श्रूयमाण प्रयोजन ही फल है।

- **अर्थवाद-** प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तत्र तत्र प्रशंसनमर्थवादः।
  प्रकरण में प्रतिपादित करने योग्य अद्वितीय वस्तु परमब्रह्म की जहाँ-जहाँ अवसर प्राप्त होने पर की गई प्रशंसा को अर्थवाद कहा गया है।
- **उपपत्ति-** प्रकरणप्रतिपाद्यार्थसाधने तत्र तत्र श्रूयमाणायुक्तिरुपपत्तिः
  प्रकरण में प्रतिपादनयोग्य अद्वितीय वस्तु परमब्रह्म को प्रमाणित सिद्ध करने के लिये यत्र-तत्र जो तर्क एवं युक्तियाँ प्रस्तुत की जाती है। उसे ही उपपत्ति कहा गया है।
- **मनन -** मननं तु श्रुतस्याद्वितीयवस्तुनो वेदान्तानुगुणयुक्तिभिरनवरतमनुचिन्तनम्।
  वेदान्त में प्रतिपादित अनुकूल युक्तियों के माध्यम से अद्वितीयतत्त्व ब्रह्म का निरन्तर चिन्तन करना ही 'मनन' कहलाता है।
- **निदिध्यासन -** विजातीयदेहादिप्रत्ययरहिताद्वितीयवस्तुसजातीयप्रत्ययप्रवाहो।
  शरीर से लेकर बुद्विपर्यन्त भिन्न - भिन्न सभी जड़ पदार्थों में भिन्नता की भावना का परित्याग करके, सभी को एकमात्र ब्रह्म मानकर, विश्वास करना ही निदिध्यासन है।

ब्रह्म का साक्षात्कार होने तक अपेक्षित अनुष्ठान

- **श्रवण**- षड्लिङ्गयुक्त वेदान्तवाक्यों का अद्वितीय वस्तु में तात्पर्य।
- **मनन** - षड्लिङ्गयुक्त वेदान्तवाक्यों को समझकर निरन्तर ब्रह्म चिन्तन।
- **निदिध्यासन** - एकमात्र ब्रह्म में विश्वास

- **समाधि -** समाधि दो प्रकार की होती है। 1. सविकल्पक समाधि 2. निर्विकल्पक समाधि

  समाधिर्द्विविधः सविकल्पको निर्विकल्पकश्चेति।
- तत्र सविकल्पको नाम ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयानपेक्षयाद्वितीयवस्तूनि तदाकाराकारितायाश्चित्तवृत्तेरवस्थानम्।
- **सविकल्पक समाधि -** इस समाधि में ज्ञाता एवं ज्ञेय के भेद का लोप न होकर केवल अद्वितीयवस्तु के आकार से आकारित चित्तवृत्ति की स्थिति ही सविकल्पक समाधि है।
- जिसमें समाधि होने के बाद भी उसे अपने आपका और दूसरे का भी भान न हो वह सविकल्पक समाधि है। जैसे -मिट्टी का हाथी।

  ज्ञाता - जो जानना चाहता है अर्थात् जिज्ञासु।

  ज्ञेय - ब्रह्म या जिसको जानना चाहते हैं।

  ज्ञान - विषय (ब्रह्म) को पाने का मार्ग ज्ञान है।

त्रिपुटी
- ध्याता, ज्ञाता
- ध्यान, ज्ञान
- ध्येय, ज्ञेय

प्राणायाम

1. रेचक 2. पूरक 3. कुम्भक

समाधि के विघ्न

1. लय (निद्रा आना)
2. विक्षेप (अन्यवस्तु का आलम्बन)
3. कषाय (राग, द्वेष से चित्त का जड़ होना)
4. रसास्वादन (समाधि से प्राप्त आनन्द का अनुभव)

जीवन्मुक्ति का स्वरूप

1. अखण्ड ब्रह्मज्ञान।
2. अज्ञान दूर होकर ब्रह्म साक्षात्कार।
3. सञ्चित क्रियमाणादि कर्म, संशय, विपरीत ज्ञान का विनाश।
4. कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि बन्धनमुक्त तथा ब्रह्म के स्वरूप में स्थित होना।

- **निर्विकल्पक समाधि -** जिसमें अपने आपका और वर्षा, तूफान किसी भी वस्तु का ज्ञान न रहें वह निर्विकल्पक समाधि है।
- निर्विकल्पकस्तु ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयापेक्षयाद्वितीयवस्तुनि-तदाकाराकारितयाश्चित्तवृत्तिरतितरामेकीभावेनावस्थानम्
- **समाधि के आठ अङ्ग-** 'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इसके आठ अङ्ग है। अस्याङ्गानि - यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयः।

निर्विकल्पक समाधि

1 यम, 2 नियम, 3 आसन, 4 प्राणायाम, 5 प्रत्याहार, 6 धारणा, 7 ध्यान, 8 समाधि

- **1.यम-** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।
- **2. नियम-** शौच, सन्तोष, तप,स्वाध्याय एवं ईश्वर की आराधना ये पाँच नियम हैं। शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।
- **3.आसन-** हाथ, पैर आदि की स्थिति विशेष के बोधक पद्म एवं स्वस्तिक आदि आसन हैं। करचरणादिसंस्थानविशेषलक्षणानि पद्मस्वस्तिकादीन्यासनानि।
- **4.प्राणायम-** रेचक, पूरक, कुम्भक लक्षणों से युक्त प्राण को नियन्त्रित करने का उपाय ही प्राणायाम है। रेचकपूरककुम्भकलक्षणाः प्राणनिग्रहोपायाः प्राणायामाः

- **5.प्रत्याहार-** अपने- अपने विषयों से इन्द्रियों को निवृत्त कर लेना 'प्रत्याहार' है। इन्द्रियाणां स्वस्वविषयेभ्यः प्रत्याहरणं प्रत्याहारः।
- **6.धारणा-** अद्वितीयवस्तु (ब्रह्म) में अन्तरिन्द्रियों (मन, बुद्धि एवं चित्त) को नियोजित करना 'धारणा' है।
  अद्वितीयवस्तुन्यन्तरिन्द्रियधारणं धारणा।
- **7.ध्यान-** अन्तरिन्द्रियों मन एवं बुद्धि आदि को रुक-रुककर उस अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में प्रवृत्त करना ही ध्यान है।
  तत्राद्वितीयवस्तुनि विज्झिद्य विच्छिद्यान्तरिन्द्रियवृत्तिप्रवाहो ध्यानम्।
- **निर्विकल्पक समाधि के विघ्न -** निर्विकल्पक समाधि में चार विघ्न माने गये है। लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद नामक चार विघ्न होते है।
  लयविक्षेपकषायरसास्वादलक्षणाश्चत्वारो विघ्नाः सम्भवन्ति।

(i) लय- सविकल्पक से निर्विकल्पक समाधि में जाते समय कहीं नींद न आ जाय वह समाधि का लय नामक विघ्न है। लयावस्था में जाना।
लयस्तावदखण्डवस्त्वनवलम्बनेन चित्तवृत्तेर्निद्रा।

(ii) विक्षेप - जिस पर हम ध्यान लगाना चाहते हैं, उस पर ध्यान लगाने पर किसी और वस्तुओं पर भी हमारा मन चला जाय वह विक्षेप नामक विघ्न है। चित्तवृत्तेरन्यावलम्बनं विक्षेपः।

(iii) कषाय - जिस ब्रह्म पर हम ध्यान लगायें और उसी समय राग आदि का भाव आ जाय या क्रोध पीड़ा होना आदि ये सब कषाय विघ्न हैं।
लयविक्षेपभावेऽपि चित्तवृत्ते रागादिवासनयास्तब्धीभावादखण्डवस्त्वनवलम्बनं कषायः।

(iv) रसास्वाद - सविकल्पक समाधि में जब हम ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। उसी के साथ - साथ हमें और भी आनन्द की प्राप्ति होती है उसी में निर्विकल्पक समाधि मानकर सन्तुष्ट हो जाना ही रसास्वाद नामक विघ्न है।
अखण्डवस्त्वनवलम्बनेनापि चित्तवृत्तेः सविकल्पकानन्दास्वादनं रसास्वादः।

- चार प्रकार के विघ्नों से पूर्णतयारहित चित्त, जब वायुरहित प्रदेश में स्थित दीपक के समान अचल होकर अखण्ड चैतन्यमात्र में स्थित रहता है। तब निर्विकल्पकसमाधि होती है, ऐसा कहा जाता है।
  विघ्नचतुष्टयेन विरहितं चित्तं निर्वातदीपवदचलं ----
  जीवन्मुक्ति - जीवन्मुक्ति का लक्षण है-
  ''भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
  क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।'' (मुण्डकोपनिषद्)
- समस्त बन्धनों से रहित हो जाने से केवल ब्रह्म में ही तत्पर रहने वाले ब्रह्मनिष्ठ को ही जीवन्मुक्त कहते हैं।
  ''अखिलबाधरहितो ब्रह्मनिष्ठः '' मुण्डकोपनिषद्
  उपदेशसाहस्री में जीवन्मुक्ति का लक्षण -
- सुषुप्तवज्जाग्रति यो न पश्यति, द्वयं य पश्यन्नपि चाद्वयत्वतः।
  तथा च कुर्वन्नपि निष्क्रियश्च यः, स आत्मविन्नान्य इतीह निश्चयः।।

सुषुप्ति के समान जो जाग्रत अवस्था में भी हर जगह अद्वैत को ही देखता है। द्वैत को देखता हुआ भी उसमें विद्यमान अद्वैत का ही दर्शन करता है तथा जो कर्म करते हुए भी निष्क्रिय है। वही इस लोक में आत्मज्ञानी है। अन्य कोई नहीं,यह निश्चित है।

कर्म - कर्म तीन प्रकार के हैं।

1. सञ्चित कर्म 2. क्रियमाण कर्म 3. प्रारब्ध कर्म

- अनादिकाल में किए गए कर्म जिनका फल अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है,**सञ्चितकर्म** कहलाते हैं।
- मन, वाणी एवं कर्म द्वारा वर्तमान जन्म में किए जा रहे कर्म - क्रियमाण कर्मों की श्रेणी में आते हैं। क्रियापूर्ण होने के बाद ये **सञ्चितकर्म** हो जाते हैं।
- चिरकाल के सञ्चित कर्म, जब फलोन्मुख होकर शुभ अथवा अशुभ फल प्रदान करने में तत्पर रहते हैं तब वे ही प्रारब्धकर्म कहलाते हैं।

प्रारब्धकर्म भी तीन प्रकार का होता है।

1. स्वेच्छाकृत 2. परेच्छाकृत 3. अनिच्छाकृत

- स्वेच्छा, अनिच्छा अथवा परेच्छारूप प्रारब्ध कर्मों द्वारा प्राप्त कराए गए, सुख एवं दुःखरूप फलों का अनुभव करते हुए, प्रारब्धकर्मों की समाप्ति के बाद आनन्दस्वरूप आन्तरिक आत्मारूप के बाद परमब्रह्म में प्राणों के लीन होने पर सृष्टि के कारण अज्ञान तथा उसके कार्यरूप संस्कारों के पूर्णतया नष्ट होने के बाद उसे सभी प्रकार के भेदों का आभास होना बन्द हो जाता है।
- इस अवस्था में जीवन्मुक्त का शरीर पात हो जाता है तथा परमकैवल्य एकमात्र आनन्दरूप में स्थित हुआ वह अखण्ड ब्रह्मरूप में ही स्थित हो जाता है।

कर्म (समाधि युक्त)

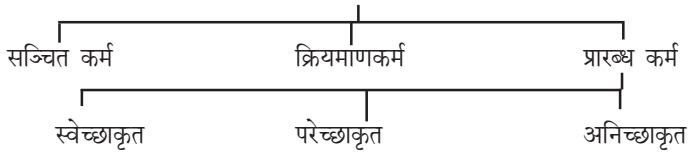

- प्रातिभासिक, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक इन तीन प्रकार की सत्ताओं में से यहाँ जगत् की व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक सत्ता को स्वीकार किया गया है।
- वेदान्त में एकमात्र ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की गई है।
- ब्रह्म जब शुद्धसत्त्वप्रधान अज्ञान से आवृत्त होता है तो इसी को ईश्वर कहा जाता है। यही अव्यक्त अन्तर्यामी संसार का कारण रूप होने से कारणशरीर कहलाता है।
- सूक्ष्म एवं स्थूलशरीरों का कारणशरीर लयस्थान भी होता है।
- स्थूल एवं सूक्ष्म जगत्प्रपञ्च का लयस्थान होने के कारण इसी कारणशरीर को सुषुप्ति भी कहा गया है।
- प्रलय की अवस्था में भी कारणशरीर की स्थिति बनी रहती है।

❑❑